भक्त हृदय के उद्‌गार..

नन्हीं बुँदियाँ बरसें सखी, वो राम मिलन को तरसें सखी।
नन्हीं बुँदियाँ बरसें सखी।।

इक इक बूँद जो बरसे, कहें राम का काज करे।
बिन चाहना बिन संग के, देख सखी हर बूँद बहे।।

अनेक बूँद निरपेक्ष हुई, उदासीन बहे जाती हैं।
मन मेरी सब देख करी, निरपेक्ष नहीं हो पाती है।।

बूँद ने कभी यह नहीं कहा, वा जल उसको थाम ले।
बूँद ने कभी भी नहीं कहा, कौन उसका धाम है रे।।

महा ज्ञानी ज्ञान स्वरूप, बुँदिया को ही जान लूँ।
निश्चित पथ निश्चित राहें, बुँदिया की ही जान लूँ।।

इस तन का स्वभाव राम, बुँदियावत् अब हो जाये।
जो तन जब भी यह पाये, नाम मग्न बस हो जाये।।

- परम पूज्य माँ
प्रार्थना शास्त्र 3, न. 647
22.3.1961

अनुक्रमणिका

1. भक्त हृदय के उद्‌गार...
नन्हीं बुँदियाँ बरसें सखी...

3. जग दर्शन – एक विलक्षण दृष्टिकोण!
डॉ. जे.के. महता

6. शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष!
परम पूज्य माँ से पिताजी के प्रश्नोत्तर

12. उसका केन्द्र अब नश्वर में नहीं, शाश्वत में स्थापित हो चुका होता है...
श्री हरिश्वर दयाल

15. अपना सहज गुण धर्म निभाते हुए, मर जाना भी श्रेष्ठ है..!
अर्पणा प्रकाशन - श्रीमद्भगवद्गीता - 'भगवद् बाँसुरी में जीवन धुन' 3/35-37

21. जब जीते जी ही तन दिया, तो मेरा कुछ भी नहीं रहा...
अर्पणा प्रकाशन - 'गंगा श्रद्धा प्राणप्रद'

25. कभी कभी अतीत की यादें कैसे उभर कर ज़हन पे आ जाती हैं...
श्रीमती पम्मी महता

29. सत्त्व में जिस पल आ गया, रजोगुणी मन नहीं रहा...
मुण्डकोपनिषद्, तृतीय मुण्डक - 1/2

33. परम पूज्य माँ की करुणा
श्रीमती धर्मवती सूद

35. अज सत्य पथ मुझे मिल गया, खुशियाँ मनावो रे...
प्रश्नोत्तर पर आधारित

37. अर्पणा समाचार पत्र

सम्पादक की ओर से

गद्य में प्रस्तुत सभी लेख साधकों के प्रश्नों के उत्तर में परम पूज्य माँ द्वारा प्राप्त सत्संगों पर आधारित हैं और संकलन-कर्ता की निजी समझ के अनुकूल हैं। काव्य की पंक्तियाँ पूज्य माँ के मुखारविन्द से प्रवाहित दिव्य प्रवाह का अंश हैं, जिन्हें सुश्री छोटे माँ ने लेखनीबद्ध किया है। अपनी पूर्ण सामर्थ्य के अनुसार उसे ज्यों का त्यों प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुति में किसी भूल के लिये हम क्षमा प्रार्थी हैं।

सम्पादक : *पूनम मलिक*
सह सम्पादक : *श्रीमती साधना पाल*

पता : अर्पणा आश्रम, मधुबन, करनाल,
132 037, हरियाणा भारत

श्री हरीश्वर दयाल, अर्पणा ट्रस्ट, मधुबन, करनाल 132 037, हरियाणा द्वारा जून 2026 में प्रकाशित

जग दर्शन – एक विलक्षण दृष्टिकोण

डॉ. जे.के. महता

अर्पणा पुष्पांजलि के पूर्व अंक से

संसार में, हमें दिनचर्या में जो भी मिलता है, वह या तो हमारे अनुकूल होता है अथवा प्रतिकूल। अनुकूल तो हमें रुचिकर लगता है परंतु प्रतिकूल अरुचिकर! हम चाहते हैं कि हमें रुचिकर ही बार-बार मिले, इसे राग कहते हैं। अरुचिकर से हम दूर रहना चाहते हैं, जो द्वेष कहलाता है। हमारा सहज जीवन इस रुचिकर अथवा अरुचिकर, यानि राग और द्वेष, पर ही आधारित होता है। इसके कारण ही हमारी बुद्धि आवृत हो जाती है। किसी भी परिस्थिति में हम ठीक निर्णय नहीं ले पाते, अधिकांश तो किसी को ठीक से देख भी नहीं पाते और कई बार तो मिथ्या दोषारोपण तक कर देते हैं। जो हमें पसन्द नहीं है उसकी निन्दा करना, उसे नीचे गिराना हमारे स्वभाव का एक सहज अंग बन गया है।

यह सब मैं अपने जीवन के अनुभव के आधार पर कह रहा हूँ। पूज्य माँ के सम्पर्क में आने से पहले यह मेरा दृष्टिकोण होता था। समाज में मैं एक शान्त, संत स्वभाव वाला और परहितकारी व्यक्ति जाना जाता था। यह सत्य भी था, निराधार नहीं था। नगर में मित्रों और सम्बन्धियों में मेरा बड़ा मान और प्रतिष्ठा थी। यह मान और प्रतिष्ठा मिथ्या दम्भ पर आधारित नहीं थी, बल्कि मेरे आन्तरिक गुणों और जीवन के व्यवहार से प्रमाणित थी।

इस बाह्य साधुतापूर्ण जीवन प्रवाह के कारण मैं अपने आंतर के राग-द्वेष को देख नहीं पाता था। मैं अपने आप को सर्वश्रेष्ठ और पूर्णतया निर्दोष समझता था -

"प्रभु जी मेरे अवगुण चित्त न धरो,
मैं जैसा भी हूँ मुझे स्वीकार करो।"

कहता तो मैं यह नित्य था... पर मुझ में कोई अवगुण है, ऐसा नहीं मानता था। पुकार चाहे मिथ्या ही थी, पर लगता है भगवान जी ने एक दिन सुन ली। क्या कहूँ उन करुणामय भगवान की अहेतुकी कृपा

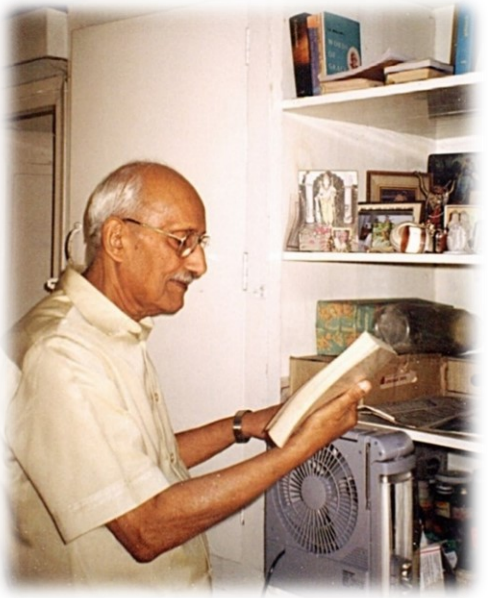

का जो नितान्त दोष दृष्टि रहित हैं! उन्होंने मेरी झूठी पुकार को भी सत्य कर दिया। 1958 में पूज्य माँ का सम्पर्क अनायास ही प्राप्त हो गया।

आज तक पूज्य माँ ने स्वयं अपने जीवन के बारे में कुछ नहीं कहा। हमारे प्रश्नों के उत्तर में आध्यात्मिक दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण तो कई बार किया, परंतु वास्तविक स्पष्टीकरण तो उनके जीवन के दर्शन से हुआ। निरंतर सहवास के कारण अनेक परिस्थितियों में उनके और मेरे दृष्टिकोण का भेद स्पष्ट दिखने लगा, जो उन्हीं के द्वारा दिये गये ज्ञान से समझ कर मैं कुछ ग्रहण करने लगा।

बचपन से ही जो इनका दृष्टिकोण था, उसके कुछ संकलन आप के सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूँ -

पूज्य माँ जब सातवीं कक्षा में पढ़ते थे तो इनकी एक सहेली फेल हो गई और माँ उत्तीर्ण होकर आठवीं कक्षा में चले गये। इनकी सहेली बहुत उदास हो गई और रोने लगी, इसलिए नहीं कि वह फेल हो गई थी, बल्कि इसलिए कि मित्रता टूट जायेगी। पूज्य माँ ने उसको बहुत आश्वासन दिलाया कि मित्रता वैसे ही बनी रहेगी, टूटेगी नहीं। पर उसको विश्वास नहीं हुआ। माँ आठवीं कक्षा में ना जा कर सातवीं कक्षा में ही रुक जायें, इसके लिये उन्होंने अपनी माता और मुख्याध्यापिका को मना लिया। पूज्य माँ ने हमें सत् पथ पर प्रेरणा देते हुए कई बार कहा है - दूसरों की झोपड़ी बचाने के लिये अपना महल जला देना सतोगुण का प्रमाण है। सतगुण वाला केवल दूसरे के लिये जीता है, जहाँ अपना आप उसे याद ही नहीं रहता।

पूज्य माँ जब पंजाब यूनिवर्सिटी में नौकरी करते थे तो अगर कोई भी दीन दरिद्र इनके पास अपनी याचना लेकर आता था, तो उसकी आवश्यकता वह स्वयं धन देकर पूर्ण करते थे। कई बार महीना खत्म होने से पहले ही इनके पैसे समाप्त हो जाया करते थे। एक बार ऐसे ही महीने के अन्त में जब पूज्य माँ के पास पैसे खत्म हो गये थे, एक विधवा अपनी लड़की के विवाह अर्थ धन लेने के लिये इनके पास आई। पूज्य माँ इससे एक दिन पहले ही नया रेडियो ख़रीद कर लाये थे। उसे वह रेडियो दे दिया और कहने लगे कि इसे गिरवी रखकर पैसे ले लो, वेतन मिलने पर मैं इसे छुड़वा लूँगी।

शास्त्र जिसे पावन जीवन कहते हैं, पुण्यात्मा कहते हैं, पूज्य मां सचमुच वैसे ही थे, जिसके कारण यह अनेक विपरीततायें होते हुए भी नित्य मुदित रहते थे, दुःख आने पर इन्हें छू न पाते और न

ही इनके दृष्टिकोण पर कोई प्रभाव डाल सकते। शुद्ध सात्त्विक गुण प्रवाह ही इनका जीवन था। कैसा अटल वह दृष्टिकोण था जिसमें अपना पूर्ण भुलाव और दूसरा ही प्रधान था।

1958 में जब पूज्य माँ की साधना प्रारम्भ हुई तो उस शुद्ध सात्त्विक दृष्टिकोण में नाम का आवाहन हुआ। एक राम ही पूर्ण सृष्टि के रचयिता रह गये, उनके अतिरिक्त कहीं और कुछ नहीं रहा। राम नाम कहते हुए वह 'मैं' उसी में खो गई, वह पूर्ण मौन हो गई। आज उसका कहीं लेशमात्र भी नहीं मिलता। जग के रचयिता उस ईश्वर के तद्रूप हो, उसमें समाहित हो, वह पूर्ण जग को अपने में ही देखने लगे। सारा संसार अपनी ही वृत्ति का विस्तार लगा। कहीं कोई भेदभाव नहीं रहा। अपने-पराये का भेदभाव छोड़कर समदृष्टि हो गये।

दूसरी ओर, मैं शास्त्र कथन कहता तो अवश्य था, परंतु मानता नहीं था। 'राम की रचना जग सारा' ऐसा मैं कहता तो अनेक बार था परंतु दूसरों के प्रति दोष दृष्टि, मन में उनका ठुकराव, किसी से क्षण मात्र भी विपरीतता मिलने पर मन का भड़क जाना - मेरे यह चिन्ह मेरी कथनी के विरुद्ध थे, यह मैं जानता नहीं था। इस कारण समझता था मैं तो केवल भगवान के नाम से प्रीत रखता हूँ।

पूज्य माँ के सम्पर्क और निरंतर उनके और अपने जीवन के अनुदर्शन से ही तो पता लगा कि उनके और मेरे 'नाम' के दृष्टिकोण में कितना अन्तर है। इधर मैं नाम लेता था, उधर राम का आवाहन है जिसमें 'मैं' मौन होता गया। इधर नाम लेने से मैं और भी श्रेष्ठ बनता गया और अपने आप को अन्य लोगों से श्रेष्ठ मानने लगा। उधर सब ही राम के रूप दिखने लगे। इधर मैं पूज्य बनता गया, उधर पूर्ण जग विराट रूप में वैष्णव की पूजा प्रारम्भ हो गई।

कितना सौभाग्यशाली हूँ मैं कि यह सब मैं देख तो सका। अध्यात्म केवल एक दृष्टिकोण का भेद है, तीक्ष्ण और प्रवीण बुद्धि का विस्तार नहीं। यह शास्त्र जीवन दृष्टिकोण, गुरु जीवन द्वारा प्रमाणित ही दृष्टिगोचर हो सकता है, जिसको मैं केवल श्रद्धा की भावना से देख सकता हूँ। तब उसका आवाहन हो पायेगा, नहीं तो जन्म-जन्म बीत जायेंगे और साधक साधना करता करता भी नाम का सार नहीं पा सकेगा।❖

शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष

परम पूज्य माँ के पिता जी ने बड़ी गहनता से गीता व अन्य शास्त्रों का अध्ययन किया। अनेकों बार उनके मन में जो प्रश्न उठते थे, वह पूज्य माँ के सम्मुख रख देते थे। एक ऐसे ही प्रश्न का उत्तर यहाँ पूज्य माँ दे रहे हैं।

पिता जी - शुक्ल और कृष्ण पथ केवल मनुष्य के जीवन में आध्यात्मिक उन्नति की सीढ़ियाँ हैं या मरने के बाद जीव की गति के मार्ग हैं? यह बात अभी समझ में नहीं आई। छान्दोग्योपनिषद् में कहा है कि यह भूलोक संबधी लोक हैं जहाँ से गुज़र कर जीवात्मा ब्रह्मलोक और स्वर्गलोक को जाता है - परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीमद्भगवद्गीता में इनको आध्यात्मिक उन्नति की सीढ़ियाँ कहा है। इस विषय पर रोशनी डालिये।

सारांश- शुक्ल पक्ष उत्तरायण पथ है। यह साधक को सत पथ की ओर ले जाता है। इस पथ पर चलते हुए साधक जन्म मरण से उठ जाता है। जीवन मुक्त होकर अमृत्व को प्राप्त कर लेता है। कृष्ण पक्ष दक्षिणायन् पथ है। यह अंधियारा पथ है। इस पर चल कर जीव दुःख और सुख के फल खाता हुआ, जन्म मरण की दल दल में फंसा, अतृप्त का अतृप्त ही रह जाता है। जो साधक नित्य और अनित्य के दर्शन कर लेता है, वह नित्य की ओर जाता हुआ चरणों में खो जाता है।

परम पूज्य माँ :

शुक्ल पथ और कृष्ण पथ, द्वौ पथ तू ने राम कहे।
उत्तरायण और दक्षिणायण भी, तू ने अनेकों बार कहे।।1।।

तू ने कहा उत्तरायण पथ, सत्त्व की ओर रे जाये है।
स्वर्ग लोक से होता हुआ, ब्रह्म लोक में जाये है।।2।।

कृष्ण पथ दक्षिणायण यह, जो जाये न्यून हो जाये है।
अंधियारा पथ राम है यह, कोई यहाँ पे सुख न पाये है।।3।।

मरण पर्यन्त यह सफल भये, या जीते जी ही आ सके।
कौन विधि है आकर तुम ही कहो, तुम तक कोई आ सके।।4।।

तत्व ज्ञान

अध्यात्मिक उन्नति पथ कहूँ, शुक्ल पक्ष जिसे कहते हैं।
तोरा ही क्यों न रे कहूँ, यह पथ शुक्ल जिसे कहते हैं।।5।।

यह स्वर्ग लोक यह ब्रह्म लोक, यह भूलोक है क्या रे है?
यह पथ मिला यह जिन सबको, वह लोक कहो तुम क्या रे हैं? ।।6।।

स्थूल लोक है भूलोक, जहाँ मन स्थूल में टिका रहे।
दुःख सुख फल भोगे वह मन, अंधियारे में झुका रहे।।7।।

समझ मना यह भूलोक, केवल दुःखमय होये है।
दुःखमय इस कारण जो हो, तोरा मन वहाँ आश्रित है।।8।।

जब लौ मन है स्थूल में, स्थूल के तद्रूप हुआ।
स्थूल जग में जो मिला, उसमें गर यह खो गया।।9।।

तन तद्रूप यह प्रथम हुआ, फिर जग तद्रूप रे हो गया।
मन बुद्धि राही भी रे मैं, इनमें ही खो गया।।10।।

इसे स्थूल लोक रे कहते हैं, इसे भूलोक रे कहते हैं।
मन रमण करे स्थूल में, उसे भूलोक रे कहते हैं।।11।।

क्यों न कहूँ मन ही हो पथिक, जिस ओर चले वही लोक बने।
स्थूल ओर गर मन यह बढ़े, पल में वही भूलोक बने।।12।।

ब्रह्म लोक में जाये टिके, ब्रह्म लोक सब हो जाये।
स्थूल लोक कहीं रहे नहीं, पूर्ण ब्रह्म ही हो जाये।।13।।

ज्ञान-विज्ञान सहित

पुनि समझ मनो संग सों, भूलोक बन जाता है।
ज्यों संग सों वह तोरा पुत्र रहे, नहीं राम वही बन जाता है।।14।।

जब लौ मैं और मेरा है, तब लौ हो भूलोक जानो।
जिस पल मैं ही नहीं रहे, उसको ब्रह्म का लोक जानो।।15।।

अब सुनो है यह स्वर्ग क्या, स्वर्ग लोक कोई पृथक नहीं।
भूलोक रमणी भये मन, स्वर्ग लोक तब भये नहीं।।16।।

ब्रह्म लोक की चाहना करी, मन आंतर में आ जाये।
साज सामान मैं बांध लूँ, ऐसा जो मन में आ जाये।।17।।

फिर देखे अरे कौन वृत्ति, जो रे संग नहीं जा सके।
कौन भावना ऐसी है, जो राम नहीं रे बुला सके।।18।।

अपने मन को खुद देखे, देखी के वह रे सजाया करे।
भूलोक शृंगार त्यजे, सूक्ष्म को वह चाहा करे।।19।।

सूक्ष्म के शृंगार हैं क्या, इसको जब वह जान ले।
सत्यता प्रेम धैर्य क्षमा, महा शृंगार पहचान ले।।20।।

जब यह आभूषण चाहे हो, और मन को देखे जाये है।
स्थूल को जब मन त्यजे, वहाँ स्वर्ग लोक बन जाये है।।21।।

स्थूल लोक है दृष्ट लोक, अनुभव गम्य स्वर्ग लोक।
बुद्धि रमण है ब्रह्म लोक, समझ राज़ यह आंतर लोक।।22।।

भूलोक कुछ है ही नहीं, स्वर्ग लोक कुछ है ही नहीं।
ब्रह्म लोक कुछ है ही नहीं, हाय तेरे बिना कुछ है ही नहीं।।23।।

मैं कहाँ तद्रूप हुई, वही तो लोक बनाती है।
तद्रूपता तेरी अनुकूल, यह रे लोक बन जाती है।।24।।

पुनि समझ तन संग करे, तो भूलोक बन जाता है।
मन से संग तो स्वर्ग लोक, बुद्धि से ब्रह्म बन जाता है।।25।।

बुद्धि जब रे प्रधान भये, जो कहे केवल वह माने।
मिथ्या निहित नहीं, सत्यता को सत्य माने।।26।।

सत्य वाक् वहाँ सत्य वचन, वहाँ सत्य कर्म वहाँ सत्य रमण भये।
जो भी हो सो हुआ करे, सत्य सों विचलित न होये।।27।।

यह ब्रह्म लोक के लक्षण हैं, यह आंतर गुण है जानिये।
लोक बनाये मन तेरा, इसका राज़ पहचानिये।।28।।

तन मन सों संग करे, वह संग बढ़े जग सों रे करे।
मन के कारण ही तो मना, महाप्रचंड जग रूप धरे।।29।।

गर मन मन में आन बसे, और मन मन को देखा करे।
विपरीतता मन की नहीं सहे, शृंगारिता आंतर में रे करे।।30।।

आंतर मे जब आये बसे, स्वर्ग लोक बन जायेगा।
लाख कहे जग कुछ भी, तुझे प्रहार नहीं हो पायेगा।।31।।

बाह्य वाक नहीं मंत्र भये, बाह्य का असर ही नहीं रहे।
जो करे वह किया करे, मन वहाँ ध्यान ही नहीं धरे।।32।।

स्वर्ग लोक तो स्वतः हुआ, वहाँ केवल सुख रह जायेगा।
भूलोक का इक कण भी, विचलित कर नहीं पायेगा।।33।।

स्वर्ग लोक तो स्वतः भये, जहाँ केवल सुख ही सुख भये।
बाह्य रमण मन छोड़ जो दे, महा सुखी वह आप भये।।34।।

फिर दैवी सम्पदा आ जाये, शृंगार करी वह उठी आये।
नयनन् से फिर प्रेम बहे, काजल नहीं वहाँ टिक पाये।।35।।

वा चमक दमक रे देखे क्या, आंतर सौंदर्य बहता है।
क्षमा दया आर्जवता का, बहाव बनी वह बहता है।।36।।

फिर सत्त्व की ओर रे मन बढ़े, अब ब्रह्म को चाहता है।
सुख तो मिला, पर उस सुख सों भी मन भर जाता है।।37।।

अब कहे मैं जानूँ हे, निरंतरता यहाँ नहीं नहीं।
जाने कब मन बिगड़ पड़े, स्थिरता यहाँ पे नहीं नहीं।।38।।

मन के गुण वह जान करी, अब वह ब्रह्म को चाहता है।
बस रे राम जो तू कहे करूँ, इतना ही वह चाहता है।।39।।

जो राम कहे वा बुद्धि को, वह अपनाना चाहता है।
हा श्याम वाक में, नित्य रमण और भ्रमण वह चाहता है।।40।।

केवल सत्त्व में आये रे रहूँ, यह चाह वहाँ पर उठी आये।
क्यों न कहूँ शुल्क पथ पे, वह मन बढ़ता ही जाये।।41।।

ब्रह्म लोक में जाये करी, स्वर्ग का कहाँ रे ध्यान रहे।
कहे रे केवल सत्य चाहूँ, मन उजड़े उजड़े या न भी रहे।।42।।

उजड़ी सी मस्ती यह भये, मनो लोक वह त्यजने चले।
सत्य की ओर रे जो बढ़े, वह शुक्ल पथ पे क़दम धरे।।43।।

शुक्ल पथ अरे वह ही है, जो ब्रह्म तलक ले जाता है।
मत कहना जब तन रे त्यजा, तब ही हो यह पाता है।।44।।

जीते जी ही हो सके, और मन राही ही हो सके।
नहीं अंधा अंधा ही रहे, वहाँ केवल कृष्ण पथ हो सके।।45।।

कृष्ण पक्ष में अंधियारा, वहाँ सत्त्व दीख नहीं पाता है।
शनैः शनैः नीचे को चले रे, अहं ही बढ़ता जाता है।।46।।

मैं ही बढ़ता जाये है, दूजा नज़र न आये है।
ज्यों ज्यों जग में नाम बढ़ा, अंधियारा रे बढ़ जाये है।।47।।

जितना मान जो धन मिले, उतना पतन हो जाये है।
कोई दूजा भी है कहीं, यह याद ही नहीं रह पाये है।।48।।

जो चाहा इसे करने को, जो चाह उठी उसे पाने को।
कभी तो सीस झुका भी दे, निज रेखा को मनाने को।।49।।

पर राहों में तन जो आये, उसको मिटाना चाहता है।
सत्य है क्या यह कभी भी, वह देख नहीं रे पाता है।।50।।

तन तद्रूप रे प्रथम हुए, फिर मन तद्रूप रे हो गये।
फिर बुद्धि जो मन ने घढ़ी, वह आप ही जाके हो गये।।51।।

जन्म जन्म के आन्तर रे, ब्रह्म में वा रे हो गये।
कृष्ण पथिक जो जो रे थे, वह महा निकृष्ट रे हो गये।।52।।

फिर योनि योनि में भ्रमें, जस चाहना थी योनि मिली।
हाय सर्प वृति रे सर्प भयी, अन्य वृति रे वही भई।।53।।

चौरासी लाख यह योनियाँ, वा में वह खोने लगा।
अंधियारा हाये देख मना, भीषण और होने लगा।।54।।

पर शुक्ल पथ पे जो चला, सत्त्व ओर बढ़ने लगा।
जान मना यह मन ही है, जो पथ पे चलने लगा।।55।।

मनो बहाव से जानिये, किस ओर यह जाये रहा।
और संग में यह भी देख रे ले, सुख कितना है आ रे रहा।।56।।

स्थूल पे आश्रित सुख नहीं, आंतर में कितना होये।
स्वर्ग लोक सब देखिये, आंतर सुख जितना होये।।57।।

यह देख करी यह जान करी और विधि मान के एक राम।
कहो राम राम राम रामा रे----

मन में जब चाह उठे, केवल सत्त्व रे पाने की।
पथ स्वतः ही बन जाये, गर चाह उठे वहाँ जाने की।।58।।

जब रे चाह ही नहीं उठे, तब मृत्यु लोक को जाता है।
अंधियारा रे इस मन का, निरंतर बढ़ता जाता है।।59।।

यह समझ करी यह जान रे लो, यह पथ मन ही बनाये है।
मन का रंग ही यह रे लोक, आप ही कहलाये है।।60।।

इसको जान करी साधक, कहो राम अरे राम।
राम राम राम, रामा रे.....

27.7.1966

उसका केन्द्र अब नश्वर में नहीं, शाश्वत में स्थापित हो चुका होता है

श्री हरिश्वर दयाल

"जो व्यक्ति आध्यात्मिक स्तर पर जीता है, उसके लिए स्थूल प्रारब्ध का कोई अर्थ नहीं रह जाता। प्रारब्ध उसे वही देता है जो उसके लिए नियत है, परंतु वह स्वयं न तो उससे प्रभावित होता है और न ही अपने शरीर अथवा नाम में उसकी कोई रुचि रहती है।"

- परम पूज्य माँ

यह कितना गहन, कितना मुक्तिदायक वचन है!

कुछ ही शब्दों में माँ ने सांसारिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन के बीच का सम्पूर्ण अंतर प्रकट कर दिया है - देहभाव में जीने और आत्मभाव में स्थित होने का अंतर।

सामान्यतः मनुष्य अपने स्थूल अस्तित्व के साथ तादात्म्य करके जीता है - शरीर, व्यक्तित्व, इतिहास, उपलब्धियाँ, संबंध, प्रतिष्ठा, इच्छाएँ, भय और मन की असंख्य तरंगों के साथ। इसी कारण प्रारब्ध उसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है। थोड़ी-सी प्रशंसा उसे प्रसन्न कर देती है, थोड़ी-सी निन्दा उसे भीतर तक घायल कर देती है। लाभ उसे उत्साहित करता है, हानि उसे तोड़ देती है। उसका सम्पूर्ण जीवन 'मैं' और 'मेरे' के इर्द-गिर्द घूमता रहता है।

किन्तु माँ यहाँ चेतना की एक बिल्कुल भिन्न अवस्था की ओर संकेत कर रही हैं।

आध्यात्मिक पुरुष अब देह-चेतना में स्थित होकर नहीं जीता। वह शरीर में रहता अवश्य है, उसका उपयोग भी करता है, उसकी देखभाल भी करता है, परंतु स्वयं को शरीर नहीं मानता। जैसे वस्त्र पहनने वाला जानता है कि वह वस्त्र नहीं है, वैसे ही ज्ञानी जान लेता है -

"मैं यह शरीर नहीं हूँ, मैं यह मन नहीं हूँ, मैं यह क्षणभंगुर व्यक्तित्व नहीं हूँ।"

और जैसे ही यह मिथ्या तादात्म्य टूटता है, प्रारब्ध का भय समाप्त हो जाता है।

प्रारब्ध शरीर और मन से सम्बन्धित है। भूख, बीमारी, सुख, दुःख, सम्मान, अपमान, लाभ, हानि - ये सब प्रारब्ध कर्म के अनुसार आते रहते हैं। जीवन की धारा चलती रहती है। ज्ञानी इस प्रवाह का विरोध नहीं करता। शरीर सुख या पीड़ा का अनुभव कर सकता है, परिस्थितियाँ बदल सकती हैं, संसार सम्मान दे सकता है या तिरस्कार - पर भीतर वह अछूता बना रहता है।

क्यों?

क्योंकि जो स्वयं को इन सबका स्वामी मानता था, वही मिट चुका है।

माँ कहती हैं - "प्रारब्ध उसे वही देता है जो उसके लिए नियत है..."

अर्थात जीवन चलता रहता है। घटनाएँ घटती रहती हैं। कर्म अपना फल देता रहता है। प्रारब्ध की नदी बहती रहती है... परंतु वह स्वयं न तो उससे प्रभावित होता है और न ही अपने शरीर अथवा नाम में उसकी कोई रुचि रहती है।

यही आध्यात्मिक स्वतंत्रता का सार है।

ज्ञानी अब 'व्यक्ति' की कहानी में रुचि नहीं रखता। उसका अस्तित्व अब नाम, प्रसिद्धि, पद, मान्यता या शरीर की अवस्थाओं पर आधारित नहीं रहता। जो अहंकार निरंतर मान्यता चाहता था, वह पारदर्शी हो चुका होता है।

ऐसा व्यक्ति बाहर से सामान्य दिखाई दे सकता है, पर भीतर वह एक बिल्कुल भिन्न आयाम में स्थित होता है।

यदि शरीर पीड़ा में है - वह उसका साक्षी है।

यदि शरीर सुख में है - वह उसका भी साक्षी है।

यदि संसार प्रशंसा करता है - वह आकाश में गुज़रते बादल की भाँति निकल जाती है।

यदि संसार निन्दा करता है - वह भी उसे स्पर्श नहीं कर पाती।

क्योंकि उसका केन्द्र अब नश्वर में नहीं, शाश्वत में स्थापित हो चुका होता है।

इसीलिए महापुरुषों ने कहा है- "आत्मा कभी स्पर्शित नहीं होती।"

जिस प्रकार आकाश बादलों से लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार ज्ञानी प्रारब्ध की बदलती परिस्थितियों से लिप्त नहीं होता।

सामान्य मनुष्य कहता है - "मैं दुःखी हूँ।"

ज्ञानी देखता है - "दुःख शरीर और मन के क्षेत्र में घटित हो रहा है।"

सामान्य मनुष्य कहता है - "मैं सफल हुआ।"

ज्ञानी देखता है - "प्रारब्ध की एक घटना घटित हुई है।"

अहंकार प्रत्येक घटना को व्यक्तिगत बना देता है।

ज्ञान प्रत्येक घटना का साक्षी बन जाता है।

इसीलिए प्रारब्ध केवल उसी को बाँधता है जो स्वयं को कर्ता और भोक्ता मानता है।

आध्यात्मिक पुरुष इस मिथ्या स्वामित्व का त्याग कर चुका होता है।

इसका अर्थ यह नहीं कि वह संवेदनहीन या शुष्क हो जाता है। बल्कि इसके विपरीत, ऐसे महापुरुष करुणा, प्रेम और सेवा के मूर्त रूप बन जाते हैं, क्योंकि उनका जीवन अब "मेरे साथ क्या होगा?" के इर्द-गिर्द नहीं घूमता। उनका सम्पूर्ण अस्तित्व सत्य में प्रतिष्ठित हो जाता है।

माँ का यह वचन यह भी स्पष्ट करता है कि आध्यात्मिकता केवल बौद्धिक समझ नहीं है। कोई व्यक्ति बार-बार कह सकता है- "मैं शरीर नहीं हूँ," किन्तु यदि थोड़ी-सी निन्दा, भय, चिंता या हानि उसे विचलित कर देती है, तो समझना चाहिए कि यह ज्ञान अभी अनुभव नहीं बना है।

सच्ची मुक्ति तब आती है जब यह समझ मन से उतरकर प्रत्यक्ष अनुभूति बन जाती है।

तब प्रारब्ध एक स्वप्न के समान प्रतीत होने लगता है।

शरीर अपना मार्ग चलता रहता है, कर्म अपना फल देता रहता है, पर भीतर आत्मा स्वतंत्र बनी रहती है। गीता में इसी अवस्था का वर्णन है - "जो आत्मा में स्थित है, वह न प्रिय वस्तु की प्राप्ति से हर्षित होता है और न अप्रिय की प्राप्ति से विचलित।"

इसीलिए संत विपरीत परिस्थितियों में भी आश्चर्यजनक शांति में स्थित दिखाई देते हैं।

क्योंकि वे स्थूल स्तर पर नहीं जी रहे होते।

वे देहभाव से उठकर आत्मभाव में स्थित हो चुके होते हैं।

अतः माँ का यह वचन केवल दर्शन नहीं, बल्कि एक निमंत्रण है।

एक निमंत्रण - नाम, रूप, व्यक्तित्व और प्रारब्ध के मोह से धीरे-धीरे मुक्त होने का।

एक निमंत्रण - यह जानने का:

"वास्तव में वह कौन है जिसके साथ प्रारब्ध घटित होता है?"

और जब यह खोज पूर्ण हो जाती है, तब ज्ञात होता है-

शरीर का प्रारब्ध है।

मन की प्रवृत्तियाँ हैं।

व्यक्तित्व की एक कहानी है।

परंतु आत्मा - वास्तविक 'मैं' कभी बंधी ही नहीं थी।❖

अपना सहज गुण धर्म निभाते हुए,
मर जाना भी श्रेष्ठ है..

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।।

श्रीमद्भगवद्गीता - 3/35

अब भगवान प्राकृतिक गुणों के अनुकूल स्वधर्म अनुष्ठान के लिये कहते हुए कहने लगे :

शब्दार्थ :

1. **अच्छी प्रकार से आचरण किये हुए दूसरे के धर्म से,**
2. **अपना गुण रहित धर्म भी अति उत्तम होता है।**
3. **अपने धर्म में मृत्यु भी श्रेष्ठ है,** 4. **पराया धर्म भयकारक होता है।**

तत्व विस्तार :

देख नन्हीं! पहले 'धर्म' को समझ ले। धर्म शब्द 'धृ'+'मन्' से बनता है।

'धृ' का अर्थ है, 'जो है', 'जो विद्यमान है', 'जो स्थापित है', 'जो सुरक्षित है', 'जो नित्य सहायक है', 'जो आप धारण किया हुआ है'।

'मन' का अर्थ, जो यहाँ लागू होता है, उसे समझ ले। मन् का अर्थ है, 'याद करना', 'मानना', 'मूल्यवान समझना', 'बड़ा मानना', 'प्रत्यक्ष करना' और 'पूजा करना'।

इसके अनुसार **धर्म का अर्थ** होगा :

1. जो विद्यमान है, उसका आदर और उपयोग करना।
2. जो विद्यमान है, उसको प्रत्यक्ष करना।

3. जो स्थापित है, उसका अभ्यास करना।
4. जो नित्य सहायक है, उसका जीवन में प्रयोग करना।
5. जो विद्यमान मूल गुण और विशेष गुण युगों से श्रेष्ठ पुरुषों ने धारण किये हुए हों, उनका जीवन में उपयोग करना।

प्रकृति के दिये हुए उन गुणों को ही अपना धर्म मान।

अब तनिक आगे बढ़ेंगे तो देखेंगे कि गुण इन्द्रियों के भी होते हैं, गुण मन के भी होते हैं, गुण बुद्धि के भी होते हैं।

यह प्रकृति की दी हुई सहज धर्मयुक्त शक्तियाँ हैं।

जीवात्मा का धर्म :

अब जीवात्मा का धर्म है,

1. नित्य निर्लिप्त रहना। 2. नित्य निरासक्त रहना। 3. गुणों से प्रभावित न होना।
4. गुणों के प्रति नित्य उदासीन रहना। 5. तन से संग न करना। 6. आत्मवान बनना।

यह तब ही हो सकता है, यदि बुद्धि अपने धर्म में नित्य स्थित रहे।

बुद्धि का धर्म :

बुद्धि निर्णयात्मिका शक्ति को कहते हैं। यह बुद्धि ही जब विषयों से आसक्त हो गई, तब यह अपना सहज गुण भूल जायेगी तथा अपने गुणों को आवृत कर लेगी। यदि बुद्धि पक्षपाती न बने तो यह हमेशा न्याय करेगी और क्षणिक सुख के हक़ में सहयोगी नहीं बनेगी।

तब बुद्धि का निर्णय तथा सामर्थ्य सत् की स्थापना, आत्मवान बनने और श्रेष्ठता के पक्ष में होगा।

इस बुद्धि का धर्म है कि यह आपको :

1. मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाये। 2. दुःख से नित्य आनन्द की ओर ले जाये।
3. अंधियारे से प्रकाश की ओर ले जाये। 4. तनत्व भाव से निकाल कर आपको आत्मवान बना दे।
5. सत् और असत् का विवेक दिला दे। 6. असत् से निकालकर आपको सत् में स्थित करवा दे।
7. विषय आश्रितता से छुड़वा कर स्वतंत्र बना दे। 8. स्वरूप में स्थित होने की ओर ले चले।

'अपना धर्म' 'परधर्म' से श्रेष्ठ है:

यदि बुद्धि अपने सहज धर्म का पालन करे तो यह :

1. निष्काम कर्म के पक्ष में निर्णय देगी।
2. अपने तन के गुणों को बदलने के लिये नहीं कहेगी, उन्हें निष्काम भाव से इस्तेमाल करने के लिये कहेगी।
3. जिस कार्य करने का आप में सहज गुण है, उसे ही निरासक्त होकर प्रयोग में लाने को कहेगी।

आप अपने तन के सहज गुणों को तब बदलना चाहते हैं जब :

क) तन के गुणों को आप अपना मानते हैं। ख) आप तन के साथ तद्रूप होते हैं।

ग) आप तन को किसी श्रेष्ठता में स्थापित करना चाहते हैं।

किन्तु यदि यह मान लो कि आप तन नहीं हो, आप आत्मा हो तो आप तन के गुणों से अपनी तद्रूपता छोड़ देंगे। आप अपने तन को गुणों के सहित औरों को दे देंगे। फिर अपने तन के गुणों में मिथ्या गुमान न भर कर उसे सहज गुण रूपा धर्म करने देंगे। इसी प्रकार बुद्धि गर अपना धर्म निभायेगी, तब आप अपना धर्म नहीं छोड़ेंगे, बल्कि संग रहित होकर अपने गुण रूपा धर्म का अच्छी तरह अनुष्ठान करेंगे।

इस कारण भगवान कहते है, अपना सहज गुण धर्म निभाते हुए मर जाना भी श्रेष्ठ है। यदि तू औरों के गुण धर्म अपनाने के यत्न करता रहा तो :

1. जीवन भर दुःखी रहेगा।
2. कभी भी सत् में स्थित नहीं हो सकेगा।
3. सदा भयपूर्ण स्थिति में बैठा रहेगा।
4. सदा संकोच, संशय और असफ़लता का भय तुम्हें खाता रहेगा।
5. तुम्हारा तन से संग भी बढ़ जायेगा और तन की मृत्यु का भय भी बढ़ जायेगा।

नन्हीं! मेरी अपनी! आत्मवान परगुण धर्म से नित्य अप्रभावित रहते हैं।

क) सब आत्मवान हो सकते हैं। ख) सब निरासक्त हो सकते हैं। ग) सब गुणातीत हो सकते हैं।
घ) सब उदासीन हो सकते हैं। ङ) सब नित्य तृप्त हो सकते हैं।
च) सब राग द्वेष से रहित हो सकते हैं। छ) सब तनत्व भाव से परे हो सकते हैं।

किन्तु सबके गुणधर्म पृथक् होने के कारण जीवन में फ़र्क़ काम करने वाले होंगे। सबकी रेखायें और गुण भिन्न भिन्न होंगे, इस कारण कार्य भिन्न भिन्न होंगे। इसी कारण जीव को भ्रम हो जाता है कि उनके धर्म भिन्न हैं और वह भिन्न भिन्न पथ पर चलने वाले हैं।

इसलिये भगवान कहते हैं, तुम जो हो, जहाँ हो, जैसे भी गुण पाये हो, उनके साथ संग छोड़ कर, उन्हें अपना सहज गुणधर्म निभाने दो। यही तत्व सार आपको आत्मवान बना देगा।

अर्जुन उवाच

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः।।

श्रीमद्भगवद्गीता - 3/36

यह सब सुन कर अर्जुन पूछते हैं कि - हे कृष्ण!

शब्दार्थ :

1. फिर यह पुरुष, 2. न चाहता हुआ भी, 3. किसकी प्रेरणा से,
4. ज़बरदस्ती लगाये हुए जीव के समान, 5. पाप का आचरण करता है?

तत्व विस्तार :

अर्जुन कहते हैं, अब तुम यह बताओ भगवान:

क) यह क्या कारण है जिससे जीव विवश पाप कर बैठता है?

ख) वह प्रेरक कौन है जो धर्मवान से भी अधर्म करवा देता है?

ग) साधु से भी असाधुतापूर्ण कर्म कैसे हो जाते हैं?

घ) क्षत्रियों से अक्षत्रियों के पथ का अनुसरण कैसे हो जाता है?

ङ) जीव न चाहता हुआ भी ग़लती क्यों कर बैठता है?

च) जीव अपने को रोकता हुआ भी क्यों नहीं रोक सकता?

छ) जीव अपना स्वभाव क्यों भूल जाता है?

ज) जीव अपना कर्म क्यों भूल जाता है?

झ) जीव अपना कर्तव्य क्यों भूल जाता है? यह जीव पर ज़बरदस्ती कौन करता है? यह अंधविश्वास कौन उत्पन्न कर देता है?

श्री भगवानुवाच

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्।।

श्रीमद्भगवद्गीता - 3/37

अर्जुन के प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान कहते हैं :

शब्दार्थ :

1. **यह काम है, यह क्रोध है,**
2. **जो रजोगुण से उत्पन्न हुआ है।**
3. **यह बहुत खाने वाला और महापापी है,**
4. **इसको तू इस विषय में वैरी जान।**

तत्व विस्तार :

भगवान कहने लगे, अर्जुन! यह जो तूने पूछा कि कौन सी शक्ति है जो जीव से बलात्कार से पाप करवा लेती है, उसका उत्तर भी सुन ले!

'रजोगुण से उत्पन्न हुए इस काम और क्रोध में वह शक्ति है, जो आपके न चाहते हुए भी आपसे पाप करवा लेती है।'

नन्हीं! प्रथम 'काम' को सविस्तार समझ ले।

काम :

जब किसी विषय से संग हो जाता है तब :

1. उस विषय को पाने की जो इच्छा उठ आती है, उसे काम कहते हैं।
2. उस विषय को पाकर जो उपभोग की चाहना उठती है, उसे काम कहते हैं।
3. विषयों से तृप्ति की इच्छा को, विषयों की उत्कट आकांक्षा और तीव्र पिपासा को काम कहते हैं।
4. विषयों की आसक्ति और विषयों से आशा रखने को काम कहते हैं।
5. दिल में विषयों की हसरत और विषयों के प्रति जो लोलुपता है, उसको काम कहते हैं।
6. विषयों की इच्छा को काम कहते हैं।

विषय :

नन्हीं! याद रहे, संसार की हर वस्तु विषय है। संसार की हर स्थूल वस्तु, हर सूक्ष्म वस्तु, हर ज्ञान, हर भाव तथा जीव के मनोविकार भी विषय ही हैं। जीव के मन के उद्गार भी विषय ही हैं तथा जीव का मनो संसार भी विषय ही है। जीव की बुद्धि भी एक विषय ही है। जीव की
मान की चाहना भी विषय की चाहना ही है। केवल आत्मा ही किसी का विषय नहीं, अन्य जो कुछ भी है, वह विषय ही है।

इस कारण जान ले, कुछ भी चाहना 'काम' ही है। स्पर्श मात्र संसार में जहाँ संग हो जाये, वहाँ काम उठ ही आता है। वास्तव में जब तक आपका तनत्व भाव नहीं जाता तब तक काम का नितान्त अभाव नहीं होता, न ही हो सकता है। कामना गौण और तीव्र हो सकती है, उसका अभाव नहीं होता। पूर्ण रूप से कामना का अभाव नित्य निरासक्त, निष्काम स्थित आत्मवान में ही होता है।

क्रोध :

जिस पल जीव को वांछित विषय की प्राप्ति नहीं होती :

क) वह राह में आये विघ्नों पर क्रोधित हो जाता है।
ख) वह राह में आई बाधाओं के प्रति भड़क जाता है।
ग) क्रोध चित्त वृत्ति के उस उग्र भाव को कहते हैं, जो कष्ट और हानि पहुँचाने वाला है।
घ) जिसे क्रोध आ जाये, वह राह में आये विघ्नों का नामोनिशान मिटा देना चाहता है।
ङ) क्रोध चित्त की वह भड़कन है जो दूसरे से बदला लेना चाहती है।
च) क्रोध ऐसी मनो मूर्खता है जो जीव को अपनी स्थिति और दूसरों की स्थिति भी भुला देती है।
छ) क्रोध इन्सानियत को बिल्कुल ही भुला देता है।
ज) क्रोध में आकर इन्सान दूसरे का बुरा चाहता है, चाहे उसका नाश करते करते अपना भी नाश हो जाये।

झ) क्रोध जीव को पूर्ण रूप से अन्धा बना देता है।

कामना विषय आसक्ति के कारण उठती है; क्रोध अपनी वांछित कामना की आपूर्ति के कारण उठता है। (क्रोध के सन्दर्भ में श्लोक 2/62,63 16/2,4 और 18/53 देखिये।)

वास्तव में यह दोनों गुण महा अत्याचारी होते हैं। यह दोनों गुण महा निष्ठुर तथा निर्दयी होते हैं।

सम्पूर्ण आसुरी सम्पदा इस क्रोध और काम के अस्त्र शस्त्र हैं।

इसे भगवान ने महाशनः कहा!

महाशनः का अर्थ है :

1. बहुत खाने वाला।
2. बड़े उदर वाला।
3. कभी तृप्त न होने वाला।
4. जितना भोगो, उतनी अतृप्ति और बढ़े।
5. जो जितना पाता है, वह उसी विषय को उससे बढ़ कर और चाहने लगता है।

अब नन्हीं! यह देख कि संसार तो सम्पूर्ण विषयों से भरा हुआ है। जिसको जो विषय भाये, वह उसी की कामना करने लगे, तो कामना कब ख़त्म होगी? एक विषय की ही चाहना ख़त्म नहीं होती, फिर जो संसार भर के विषयों की कामना करने लगे उसका क्या बनेगा? संसार में कामनापूर्ण लोग इसी कारण धन से इतनी आसक्ति रखते हैं, क्योंकि धन में विषयों को खरीद कर आपकी कामना को पूरा करने की शक्ति है। जितना भी धन हो, जीव उसे कम ही समझता है, क्योंकि उसका सारा धन उसकी हर कामना को पूरा नहीं कर सकता। इस कारण लोभ बढ़ता ही जाता है।

लोभ :

इस लोभ से अन्धे हुए लोग आजकल क्या क्या पाप नहीं करते? इस लोभ से अन्धे हुए लोग औरों को भूखा मारने पर तुले हुए हैं। इस लोभ से अन्धे हुए लोग औरों को तड़पाने पर तुले हुए हैं। इस लोभ से अन्धे हुए लोग कौन सी तबाही लाने में संकोच करते हैं? वे महा पाप करते हुए भी नहीं घबराते।

इसी विधि जब कामना वाले की किसी कामना पूर्ति में कोई विघ्न बन जाये, तब कामी को क्रोध आ जाता है। उस क्रोध से अन्धे होकर लोग :

क) दूसरों के प्राण भी ले लेते हैं।
ख) दूसरों का चैन हर कर मुदित होते हैं।
ग) दूसरों को तबाह करने की कौन सी युक्ति नहीं करते?
घ) झूठे इल्ज़ाम भी मढ़ कर दूसरों को बदनाम करते हैं और तबाह कर देते हैं।

भगवान कहते हैं कि कामना तथा क्रोध से भरा हुआ यह रजोगुण जिसके पास हो, वह विवश हुआ पाप ही करता जाता है। जीव का सबसे बड़ा वैरी यह रजोगुण ही है। जीव की इन्सानियत को तबाह करने वाला यह रजोगुण ही है। इन्सान को जानवर समान बनाने वाला यह रजोगुण ही है।

❖ ❖ ❖

जब जीते जी ही तन दिया,
तो मेरा कुछ भी नहीं रहा..

('गंगा श्रद्धा प्राणप्रद')

गतांक से आगे..

श्रीमती कमला भण्डारी : आपने कहा है यह तन दे दो और अपना आप दे दो, इसका क्या अर्थ है? गर शिव बनने से अभिप्राय है तो फिर क्या दिया?

पूज्य माँ :

जब जीते जी ही तन दिया, तो मेरा कुछ भी नहीं रहा।
गर जीते जी यह मन दिया, तो मेरा कोई नहीं रहा।।1।।

मैं तो सब का हो गया, पर अपना किसको मैं रे कहे।
जीते जी सब दे ही चुके, जो रहे राम का वह रे रहे।।2।।

कोई ठुकराये अपनाये, इक राख की ढेरी है रे खड़ी।
मैंने दिया सब गंगे को, अब 'मैं' और 'मेरी' नहीं रही।।3।।

घर किसका यह तन किसका, मन किसका महिमा किसकी।
अपमान किसका रे हुआ, जब तन दे दी है वह जिसकी।।4।।

श्रीमती कमला भण्डारी : इतनी भीषण प्रतिज्ञा कैसे करूँ? आज कहूँ तन दे दिया, कल पुन: पुराने अभ्यास से अहम् फिर उठ आई और तन अपना लिया तो अनर्थ हो जायेगा, महापाप हो जायेगा - तो गंगा क्या कहेगी, मुझसे झूठ बोल गई?

पूज्य माँ : झूठ तो बोलना इंसान की आदत है। कौन झूठ नहीं बोलता? सबसे बड़ा झूठ तो वह मंदिर में बोलता है। इंसान के सामने तो वह झूठा है ही, परंतु भगवान के सामने किसने सच बोला? मंदिर में कहते हैं, 'जो कुछ है सब तोर'। झूठ क्यों बोलते हो? वह कहते हैं, 'जैसे राखो वैसे ठीक'। फिर बच बच कर क्यों चलते हो, तो काँटों से क्यों डरते हो ? फिर कहते हो - 'प्रभु मेरे अवगुण चित्त न धरो।' तुम चित्त न धरो और अपनी बेला हम सबके अवगुण चित्त धरें।' ठीक है न! भगवान से कहते हो 'मुझे क्षमा कर दे'। यह तभी कहेगा गर फिर से करना चाहेगा, नहीं तो क्षमा याचना का प्रश्न नहीं उठता। भगवान से सीधी बात करो कि आप क्या चाहते हैं?

गंगा के तट पर बैठकर सारे झूठ नहीं तो क्या सच बोलते हैं? लोग नहाने जाते हैं, मल धोने जाते हैं, काहे के लिये? गंगा से कुछ माँगने जाते हैं, काहे के लिये? बातें करते हैं गंगा पावनी है, पर वह मानते भी नहीं हैं कि वह पावनी है। मर कर हड्डियाँ भेज देते हैं, इससे बड़ी गंगा की तौहीन क्या हो सकती है? हे गंगे! तुझे हड्डियाँ भेज देंगे, हम अमर हो जायेंगे; अजीब बात है। यह तो नहीं हो सकता।

गंगा से प्यार है तो दे दो अपने आप को। गंगा के तट पर बैठ के उस पल जो कहा - उस पल का भाव, उस पल जो हाथ में हाथ है, वह प्यार, वफ़ा, धैर्य, ये जितने गुण हैं, जितने दैवी गुण कहे हैं, स्थित प्रज्ञ की जो बातें कहते हैं, गुणातीत की जो बातें हैं, यह पल में समझ आ जायेंगी कि उनका सारांश क्या है। अगर आप पर असर ही न हो तो वह क्या पावन करेगी? गंगा से माँगो कि आपका दिल गंगा की भाँति महान्, विशाल हो, आपके काम शिव जैसे हों, आपकी दृष्टि सत्मय हो, आप काँटों में रह सकें और काँटे काँटे न लगें।

फिर दिल की कहाँ बात रही, अपने तन की कहाँ बात रही? जब जीते जी तन ही दे दिया तो आप हैं भी और हैं भी नहीं। लोग डरते हैं, वह कहते हैं जीते जी तन देने का अर्थ मर जाना होता है। सच तो यह है कि तुम जिसे जीवन कहते हो, हम उसे मृत्यु कहते हैं। तुम जी नहीं रहे, इतना बोझा उठाये हुए हो इस तन का, इस मन का, इस बुद्धि का! इतनी अपावनता एकत्रित कर रक्खी है आपने, इसी को तो आप धोने आये हो। जिसको आप इस तरह से मौत कह रहे हो, आपके मन में द्वन्द्व हैं, आपकी बुद्धि स्पष्ट रूप से नहीं देख रही कि तन दे देना मृत्यु नहीं, जीवन है।

एक ओर से जीते जी जो अपना तन गंगा को दे देता है, वहाँ उसका न तन अपना, न मन अपना, न बुद्धि अपनी - और दूसरी ओर गर यह तीनों तुम्हारे नहीं तो सत्-चित्-आनंद ही रह जाता है, इसमें शक नहीं। वहाँ दु:ख का सवाल ही नहीं उठ सकता। दु:खघन वह हो सकता है, पर आनंद के सिवा वहाँ कुछ भी नहीं। वह पावन ख़ुद बन जाता है, उसे कुछ भी

अपावन नहीं लगता। वह बुद्धिघन ख़ुद बन जाता है, इसलिये उसे कोई भी बुद्धि बुरी नहीं लगती। जैसा भी सामने आये, वह उनके स्तर पर जा सकता है। उसे न अपने मान का ध्यान रहेगा, न कुछ और ध्यान रहेगा। इसे समझने की कोशिश करो - गंगा के पास गये क्यों? गंगा के पास जाकर पावन हो ही जायेगा, गर यह याद रहे कि मेरी हड्डियाँ यहाँ पहुँचनी हैं। जब मर जाऊँगा तो मेरे फूल उठाकर लायेंगे। क्या वह फूल होंगे? कौन सी गंध छोड़े जाता हूँ इस दुनिया में? जो केवल इस भाव से आते हैं, वह कहेंगे :

मौन हड्डियाँ न दूँगी, मैं तो जीते जी ही आऊँगी।
पावन कर दे गंगे री, नहीं तो मैं अबहुँ मर जाऊँगी।।1।।

न मान रे दे न ज्ञान दे, सुख चैना चाहे हर ले।
बस री गंगे इतना कहूँ, अब तो पावन तू कर दे।।2।।

कैसे भूलूँ गंगे री, मेरी हड्डियाँ तो यहाँ आयेंगी।
मैं माने हूँ पावनकर तू, इस भाव में ही तो आयेंगी।।3।।

पावन तब तू क्या करे, तब पावन क्या तू कर सके।
कर्म बीज तू हर न सके, आगामी रेखा क्या बदले।।4।।

इंसान मैं बन नहीं पाऊँगी, तो सोचूँ तब क्या होगा।
यह जान करी मैं आई हूँ, मेरा मन तो निर्मल करती जा।।5।।

श्रीमती कमला भण्डारी : आपने कर्म बीज की बात कही, क्या विपरीत संस्कार रूपा बीज गंगा हर सकती है?

पूज्य माँ : गंगा से कहो - मैं जो गुण, सहज में और बिना सोचे अपने में माने बैठी हूँ, इस झूठी मान्यता को हर लो। मुझमें जो विपरीतता है, उसको हर लो। मैं जो दुनिया को ठुकराती हूँ, उस ठुकराव को हर लो। मैं जो अपने आपको श्रेष्ठ मानती हूँ, इस श्रेष्ठता के भाव को हर लो। मुझे जो अपने आप पर मान है, इस मान को हर लो। जो मैं अपना मानती हूँ, उस पर साँप की तरह, कुबेर की तरह बैठी हूँ, यह भीषण संग हर लो। मुझमें जो घृणा है, उसे हर लो; जो द्वेष है, उसे हर लो। मेरे में जो अपावनता है, उसे हर लो। मेरे जीते जी हरो न! यही संस्कार बुरे हैं मेरे, इन्हें हर लो। यही मेरा भविष्य भी खराब कर देंगे! मुझे दु:खों से डर लगता है, यह डर हर लो, मुझे निर्भय बना दो। मैं एक मामूली से मामूली इन्सान बन कर रहना चाहती हूँ, लेकिन हृदय में राम रखना चाहती हूँ। बस राम राज्य कर दो मुझमें, मुझमें राम बसें।

मेरे जीते जी गर गंगा हड्डियाँ स्वीकार कर ले, तो पिंजर में 'मैं' नहीं, राम बसेंगें। राम का पुनर्जन्म तब ही होगा गर उसको जीते जी अपना तन दे दो। उसको यह आँखें दो, यह कान दो, यह हाथ दो, यह पाँव दो, यह लब दो। गर जीते जी आपने दे दिया तो शिव का आप में वास हो जायेगा। फिर आप नहीं, शिव ही रह जायेंगे। इसलिये कहते हैं - मुझ में जो बीज पड़े हुए हैं, संस्कार पड़े हैं, वह सब गंगे तुम धो

दो और वह गुमान की शक्ति भी धो दो। मेरे अहं की शक्ति, जिससे संग बल पाता है और दिनों दिन मोह बढ़ाता है, इस मिथ्यात्व से प्रेरित शक्ति को धो दो।

जहाँ तक मान गुमान का ताल्लुक़ है, यह इस तरह हो जाये जैसे मेरी तनो मृत्यु के बाद मौन हड्डियाँ आयेंगी तो होगा। तत्पश्चात् न हड्डियाँ दूँगी न फूल, क्योंकि न मेरी हड्डियाँ होंगी, न मेरे फूल होंगे। वह हड्डियाँ होंगी तो राम की, फूल होंगे तो राम के। गर रस बहा तो राम का, दृष्टि बही तो राम की। गर जीवन में रहे तो राम रहे, गर मर गये तो राम गये, हमें क्या! आप तो दृष्टा मात्र रह गये! वास्तव में दृष्टा भी न रहे, वही राम रह गये।

इसलिये कहते हैं वे असाधारण बहुत साधारण होते हैं। वे तिलक नहीं लगाते, वे कपड़े नहीं बदलते। उनकी सत्यता इतनी ही है कि वे सत्य में ही रहते हैं, वे सत् ही हैं।

श्रीमती कमला भण्डारी : अभी आपने कहा है, 'मौन हड्डियाँ गंगा में डालना, गंगा का अपमान करना है', यह तो समझ गई हूँ। तो क्या प्रचलित प्रथा ग़लत हो गई?

पूज्य माँ : नहीं! प्रथा ग़लत नहीं, इसे तत्व रूप में समझो।

पुरातन काल से हमारे श्रेष्ठ गण, गुरुजन, ब्रह्मवित्, वेदवित् और जीवनवित् जन महाप्रवीणता तथा दूरदर्शिता के बल से जानते थे कि जीव बार बार तत्व को भूल जायेगा, सत् को भूल कर मोह तथा अज्ञानता की ओर बढ़ जायेगा। इसी मनो बहाव की ओर देखते हुए और जीव की मनोसंगता देखते हुए उन्होंने शिव की कथायें रचीं। गंगा, जिसका जल कभी अपावन नहीं होता, साधारण होते हुए भी जो असाधारण है, विलक्षण होते हुए भी जो नदिया की भाँति है, उसके प्रति कहा कि वह शिव के मस्तिष्क से उत्पन्न होकर आकाश की ओर जाते हुए धरती की ओर घुमड़ आती है। गर गंगा तत्व जानो तो तुम भी ब्रह्म की ओर बढ़ सकती हो।

प्रचलित प्रथा गर चलती रही तो हो सकता है। गर जीव को गंगा में भक्ति हो गई, तो वह गंगा तत्व हेरने के राही शिव तक पहुँच जायेगा। गंगा में गर लोगों की हड्डियाँ या फूल आते रहे तो वह कभी न कभी पूछ बैठेंगे कि ऐसा क्यों? तब मृत्यु को सम्मुख रखकर शिव तत्व को जानने का प्रयत्न करेंगे।

किसी भी प्रथा या किसी भी पूजन की उपेक्षा करने से पहले उसका निरपेक्ष बुद्धि से तत्व निरीक्षण कर लेना चाहिये। अधिकांश विभिन्न धर्म, मान्यतायें, प्रथायें इत्यादि सत्-वर्धक ही होते हैं। उनके अनुयायी गण, स्वयं प्रेमास्पद का रूप धरना नहीं चाहते, इस कारण पूजन-विधि तथा तात्विक शब्दार्थ बदल देते हैं। ❖

क्रमशः

कभी कभी अतीत की यादें कैसे उभर कर ज़हन पे आ जाती हैं..

श्रीमती पम्मी महता

कभी कभी अतीत की यादें कैसे उभर कर ज़हन पे आ जाती हैं... उन्हीं यादों को बहने से आज रोकूँगी नहीं अपने को! एक बार फिर आप से बाते करते हुये, आप को सभी भाव पेश करूँगी क्योंकि आप श्री हरि माँ प्रभु जी के बिताये हुये पल जो हैं मेरे संग... आप जहाँ मुझे मेरी 'मैं' से मुक्त करने का भरसक प्रयत्न कर रहे थे... मुझे डाँट डपट नहीं रहे थे; न ही मुझे कुछ ऐसा कह रहे थे जो मेरी हक़ीक़त को छुपा ले।

कितने प्यार से मुझे अपने साथ बाँध कर आप वह सभी कह रहे थे... आपका मुझे बाँध लेने का अर्थ यह नहीं था कि कोई बन्धन है ऐसा, जो मजबूरी से बँधा हो... वह तो प्यार का ऐसा बन्धन था जो मुझे आपके प्यार की डोर से निरन्तर खेंच रहा था।

देने वाले जहाँ आप स्वयं माँ प्रभु जी हों, तो फिर आपकी कशिश स्वतः ही खेंचे लिए जाती है। मन यही चाहता था हर पल कि आपकी तरफ खिंची ही चली चलूँ... कैसा मुक्त विहार था! आपको आगे से आगे देखने की तमन्ना निरन्तर लिये जा रही थी... मन जिज्ञासु हो कर आपके दर्शनों की लालसा से परिपूर्ण हो रहा था। आपका कृपा प्रसाद मेरे हृदय दामन में भरता ही चला जा रहा था। आपकी वाणी और आपका अनुभवी जीवन मुझे मेरी पहचान भी साथ साथ करवा रहे थे।

एक ओर 'मैं' मेरी, दूजी ओर आप जहाँ 'मैं' का कोई कण भी नहीं...

'मैं' और 'मैं'-रहित का कहीं भी मेल नहीं...

एक ओर स्वार्थता और दूजी ओर निःस्वार्थता...

एक अपने लिए, दूसरा अपने प्रति उदासीन...

एक ओर भय, दूसरी ओर अभयता प्रदान करने वाला...

एक माँगने वाला धड़कने वाला मन और एक सभी के लिए धड़कने वाला दिल, जो दूसरे को अपना आप जान, उसकी आंतर की दरिद्रता, उसकी कालिमा से उभार रहे थे।

यह प्रश्न मेरे ज़हन को बार बार कचोटता, 'किस दलदल में फंसी हुई है तू, देख! कहाँ से कहाँ पहुँच गई है... आ, अपने आपको पहचान!' बिन कहे आपका हर क़दम मुझे यही कह रहा था। आखिर मैं कौन हूँ? 'मैं' ख़ामोश बनी स्वयं को आप ही आप पे केन्द्रित किये हुये थी... आप ही आप जो आंतर बाहर छाये हुये थे!

आप मुझे कोई भी ठहराव नहीं दे रहे थे... कुछ न कह कर भी आगे से आगे चलने को ही प्रेरित किये रहते। मेरे सामने आप व आपका आकर्षण इतना था कि उसी ओर खिंची चली जा रही थी। आप माँ का व्यक्तित्व इस क़दर चुम्बकीय था कि और कुछ दिखाई ही नहीं देता था आपके सिवाय। सोते-जगते, उठते-बैठते आप ही आप मुझे नज़री आते। दूसरी तरफ स्वयं को देखती तो भेद ही भेद नज़री आता। 'मैं' वाली हूँ और सामने 'मैं'-रहित मेरे माँ प्रभु हैं... एक तुलनात्मक अध्ययन (comparative study) था, जो आंतर ही आंतर चल रहा था।

आपके असीम अनुग्रह व आपकी बेपनाह मुहब्बत के आगे नतःश्री बारम्बार होते हुये आपकी मन ही मन चरण रज सीस चढ़ा लेती... तो कभी चरणन् में आपके लोटती ही चली जाती। शुक्र शुक्र करते हुये मेरे हाथ जुड़ जाते! धन्य हैं आप, जो मुझे मेरी 'मैं' की दलदल से निकाल, मुझे मुझी से उपराम दे रहे थे। बहुत ही अद्भुत व विचित्र अनुभव हो रहा था मुझे, जो आंतर की गहराइयों में उतर कर आपके पदचिन्हों को वहाँ पर निरन्तर पड़ते देख रही थी।

आश्चर्य, अतीव आश्चर्य की मनःस्थिति थी... अपने साईं रब की हर देन दिल को छूती ही चली जाती और नव नूतन भावों से आंतर का श्रृंगार करती जाती। 'मैं' से दामन चाक-चाक हो गया था। आपने उसे नवीन रूप देकर अपनी दैवी सम्पदा से भरपूर करना शुरु किया। अब तो आपके पाछे पाछे चलते ही चले जाना है मुझे... आपके लिए मेरे दिल में कशिश भी तो आप ही ने जगाई थी। आप ही में सभी इन्द्रियाँ केन्द्रित हुई हुई, मुझे आप ही से पूर्णतया जोड़े हुये थीं।

आप श्री हरि माँ प्रभु जी की अपरम्पार महिमा का मानो सामगान मेरे हृदय में निरन्तर हो रहा था। अंतर बाहर आप ही आप महसूस हो रहे थे और मुझ में अपने प्रति आस्था जगाते ही चले जा रहे थे। अपने हर पहलू में मुझे उतार कर अपने विलक्षण दर्शनों का सहभागी बनाये हुये थे।

बहुत ही विचित्र, मगर बहुत ही प्यारी अनुभूति हो रही थी... आपके सौंदर्य की व आपके जीवन की अभिव्यक्ति की भी! बार बार मन में यह भाव उठता, 'वास्तव में जीना तो इसे ही कहते हैं।' अपने आपसे उपराम हुये हुये कैसे आप सम्पूर्ण सृष्टि के लिए जीते हैं... यह कोई स्वप्न नहीं दिखा रहे थे आप माँ मुझे! वह आपके जीवन की हक़ीक़त थी जो मेरे हृदय दामन में आप भरते जा रहे थे। अतीव कृतज्ञ व पूज्य भाव से ग्रहण करने की चाहत जगी ही रहती। इस आंतर की प्यास को बुझने न दीजियेगा माँ, यह दिव्य प्रसाद न जाने कितने युगों के बाद आपसे पुनः पा रही हूँ!

कितनी अनमोल है यह देन जिसे ग्रहण करवाने के लिए आप माँ प्रभु जी ने चुन लिया इसे... यह सोचकर ही आज भी मेरा हृदय छलक छलक जाता है कि जिसे मैं आंतर में छुपाये रहती, वह आपके और मेरे बीच की अतीव स्नेहासक्त दास्तां थी, जो प्रदर्शनी के लिए नहीं थी...

आपसे पाई आपकी धरोहर को आंतर में समेट लेना मेरा अहोभाग्य था जिससे आपने मुझे नवाज़ा हुआ था। जीव पर जब आपकी अहेतुकी कृपा होती है तो हे करुणामयी माँ, क्या बताऊँ, कैसी अद्वितीय अनुभूति होती है... हर पल जो मुझे आपके क़दमों से न उठने का आशीर्वाद दिये रहती है। मेरा नसीब बन आप स्वयं को मेरे लिये आगे से आगे प्रकट ही करते चले जा रहे हैं।

मन में वही भाव उठता -

आप ही बताईये
किस मन्दिर में जा आपकी इबादत करूँ
आज हर मन को ही मेरे लिये मन्दिर कर दे
जिसको देखूँ तेरी ही चौखट का ख्याल आये
निगाह उठा जहाँ भी देखूँ मेरा हरि मुझे मिल जाये

इतनी ही अरदास, इतनी ही अर्ज़ आप श्री हरि माँ से करते हुये,
इतना ही कहती हूँ यारब
जिन राहों को पीछे छोड़ चुकी
अब उधर रुख़ न करने देना मुझे

श्रीमती पम्मी महता मन्दिर में पूज्य माँ से प्रश्न करते हुए

हे श्री हरि माँ प्रभु जी, बहुत रह लिया 'मैं' की राहों में इस आपकी कनीज ने, अब विमुख ही इसे रहने देना। आप मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर इसे चलाये लिए जा रहे हैं और आप व आपके भक्तगण किस क़दर मेरे सहयोगी बने हुये मुझे नव उमंग व नव उत्साह से भरी लिए जा रहे हैं... क्या आप प्रभु माँ मुझे चला चला कर थक चुके हैं जो मैं यहीं पे रूक जाऊँ?

आप श्री हरि माँ प्रभु जी मुझे मुझी से निकालने के लिए, कभी ज्ञान से, कभी अपनी वाणी से, कभी किसी और को समझाते हुये, मुझे समझा देते। जब तक मैं आपके उस हर इशारे को, जो मेरी तरफ होता, हृदय से उठा न लेती, आपका भरसक प्रयत्न चलता जाता। जब तक मेरा मन क़बूल न लेता मेरे उस सत्य को, आप किसी न किसी रूप में मुझे अवगत कराते ही चले जाते। अंत में आपके दो मीठे प्यार भरे बोल सीधे मेरे ज़हन में उतर जाते और मेरे चेहरे पे प्यार के भाव खिल उठते क्योंकि आप माँ की प्यार से, मुहब्बत से कही हर बात मुझे वह सभी कह भी देती और समझा भी लेतीं जो मुझे आप कहना चाहते।

सच माँ, जिन्हें आप जैसे सद्गुरु मिल जाते हैं व जिन्हें स्वयं आप अपने श्री चरणन् में स्थान दे देते हैं, उन्हीं के जीवन में आपकी आराधना के फूल खिल जाते है व असाध्य साध्य होकर ही सिद्ध हो जाता है। ईश्वर करे, असीम श्रद्धा व भक्ति से भरपूर अनुरागी मन उस मन मन्दिर में स्थाई रूप से स्थापित हो जाये व इस कनीज़ को आपके पदपूजन का अवसर मिला रहे जो यह पूर्णतया आपके श्री चरणन् पे अर्पित व समर्पित रहते हुए आप ही में जा विलीन हो जाये।❖

सत्त्व में जिस पल आ गया, रजोगुणी मन नहीं रहा
तम तद्रूप जो रहता था, सत्त्व अनुरूप वह हो गया..

गतांक से आगे..

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमान:।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोक:।।

मुण्डकोपनिषद् - 3/1/2

अर्थात् - पूर्वोक्त शरीर रूपी समान वृक्ष पर रहने वाला जीवात्मा शरीर की गहरी आसक्ति में डूबा हुआ है, असमर्थता रूप दीनता का अनुभव करता हुआ मोहित होकर शोक करता रहता है; जब कभी भगवान की अहैतुकी दया से भक्तों द्वारा नित्य सेवित अपने से भिन्न परमेश्वर को और उनकी महिमा को यह प्रत्यक्ष कर लेता है, तब सर्वथा शोकरहित हो जाता है।

तत्व विस्तार:

पूर्वोक्त तन वृक्ष पे, द्वौ पक्षी रे रहते हैं।
तनो आसन जीव संग, द्रष्टा ईश्वर रहते हैं।।1।।

जीव निमग्न हुआ तन में, महा आसक्त है हो गया।
असमर्थ दु:खी दीन हीन, विभ्रान्त वह हो गया।।2।।

मोह सों युक्त रे हो करी, शोक ग्रसित ही रहता है।
तनो संग तनो नाते संग, मन संगी संग रहता है।।3।।

अज्ञान बँधा जीव भाव, तन बधित विचरता है।
बाह्यप्रज्ञ जग अपनाये, तद्रूप हो वह विचरता है।।4।।

तमपूर्ण यह जग सारा, सत्त्व सार वह ना जाने।
अन्नमय वह अपनाये, कारण अन्न का ना जाने।।5।।

स्थूल जग यह नाम रूप, उत्पति को अपनाये है।
पूर्व कर्म का फल है यह, सार वह जान ना पाये है।।6।।

सूक्ष्म तन है मन बुद्धि, जीवत्व भाव भी वह ही है।
प्राणमय रे मनोमय, भोगी पक्षी वह ही है।।7।।

आन्तर लोक में यह बसे, तैजस इसको कहते हैं।
स्वभाव भाव और भावना, तैजस में ही रहते हैं।।8।।

आधुनिक कर्म यहीं पर हों, सूक्ष्म इसी को कहते हैं।
रजोगुणी रे यह ही है, जीव इसी को कहते हैं।।9।।

बाह्यप्रज्ञता छोड़ करी, आन्तर प्रज्ञ जो यह होये।
विश्व रूप सों संग त्यजी, ईश्वर अनुरक्त जो यह होये।।10।।

द्रष्टा पक्षी निरासक्त, सत्त्व की ओर जो यह बढ़े।
बाह्य लोक यह छोड़ करी, हृदय का वासी हो जाये।।11।।

कारण आनन्द लोक में आ जाये, समाधि स्थित यह हो जाये।
बाह्य लोक यह छोड़ करी, हृदय का वासी हो जाये।।12।।

कारण को यह जान ले, स्थूल तम रूप दूर होये।
फल भक्षण यह छोड़ कर, फल बीज रूप तद्रूप होये।।13।।

अपने आप को जान ले, निज स्वरूप पहचान ले।
मिथ्यात्व से संग न रहे, सत्त्व तत्व जो पहचान ले।।14।।

संग ही कारण सुख दु:ख का, संग कहीं पर न रहे।
अहंता ममता मोह लग्न, इक पल को भी न रहे।।15।।

द्रष्टा पक्षी जब देखे, स्वरूप याद आने लगे।
वासना पूर्ति चाहुक मन, अब स्वरूप चाहने लगे।।16।।

बाह्य मिलन है जड़ कर्म, पूर्व निश्चित है जान ले।
किस कारण वह क्योंकर हो, इसका राज़ वह जान ले।।17।।

परम तत्व को हेरन को, मन रे देख है चल पड़े।
हर वृत्ति को संग लिये, आन्तर ओर री चल पड़े।।18।।

बाह्य मिलन के यत्न त्यजी, परम मिलन की ओर बढ़े।
मिथ्यात्व ओर सों मनो प्रवाह, अब मुहार रे लो मुड़े।।19।।

हर वृत्ति जब जानकर, बस वह राम का नाम ही ले।
महाध्वनि वहाँ हो जाये, बस रे राम राम कहे।।20।।

को' सुख दु:ख किसे याद रहे, सन्त सेवित का नाम जो ले।
मोह पाश रे स्वत: विनशे, राम का इक पल नाम तो ले।।21।।

परमेश्वर करुणा पूर्ण, कर्मन् ईषण वही करे।
राह में विघ्न क्या आ सके, राम चरण में जब गये।।22।।

परम की महिमा जान ले, नितान्त शोक निवृत्त होये।
अपने आपको जान ले, आप में ही स्थित होये।।23।।

सूक्ष्म रूप जीवत्व भाव, अपनी स्थिति है कोई नहीं।
तद्रूप ही हो के रहे, नहीं तो रूप ही कोई नहीं।।24।।

मनो मान्यता भाव रूप, स्वभाव रूप रे कोई नहीं।
ध्यान ज्ञान विज्ञान रूप, तैजस रूप रे कोई नहीं।।25।।

या कारण तद्रूप होये, या तन तद्रूप रे हो जाये।
तन तद्रूप वह जीव भये, कारण में ईश्वर हो जाये।।26।।

प्रेयपथ अनुयायी गर हो, स्थूल रूप वह अपनाये।
बाह्यप्रज्ञ है मन वाका, दृश्य लिप्त वह हो जाये।।27।।

दु:ख सुख रूपी फल पूर्ण, नित्य ही भक्षण किया करे।
फलस्वरूप जीवभाव, दु:खी सुखी हो लिया करे।।28।।

ईश्वर से नाता जोड़े, आन्तर्मुखी वह हो जाये।
भाव स्रोत की खोज में ही, मन जब रे खो जाये।।29।।

श्रेय पथ अनुसरणी वह भये, नाम में ही फिर मग्न रहे।
समाधि लोक आनन्द लोक, वह सत्त्व लोक की ओर बढ़े।।30।।

द्युलोक में जा बैठे, प्रज्ञा जागृत हो जाये।
भाव रहित समाधि में, जीव स्थित जो हो जाये।।31।।

मौन अवस्था में ही यह, लय इसे ही कहते हैं।
कारण भी रे यह ही है, कर्माशय इसे कहते हैं।।32।।

कारण को जब जान ले, क्योंकर जन्मे और क्यों मरे।
प्रत्यक्ष ही जब जान ले, गुण गुणन् में वर्त रहे।।33।।

अन्त:करण ही जन्मे मरे, कर्मन् का यह खेल है।
परिस्थिति भी जो उठी, तन का हुआ जो मेल है।।34।।

शोक दु:ख नितान्त मिटे, शोक रे क्योंकर हो पाये।
कारण की महिमा देखो, कारण में ही खो जाये।।35।।

ईश्वर सत्ता जान ले, कर्तृत्व भाव फिर कहाँ रहे।
जग विस्तार जो जान ले, अहं भाव फिर कहाँ रहे।।36।।

मनोप्रवाह जो बहता था, तन तद्रूप जो रहता था।
'मेरा-मेरा' 'मैं-मैं' जो, नित्य निरन्तर कहता था।।37।।

वह मन मौन अब होने लगे, सत्त्व में खोने लगे।
जग का खेल रे जान लिया, द्रष्टावत् होने लगे।।38।।

द्रष्टा पक्षी के कह लो, तद्रूप जीव रे हो जाये।
बाह्य रूप और संग त्यजी, हृदय लोक में खो जाये।।39।।

मौन ही भाषा वहाँ की है, समीपस्थ वह परम के है।
अनुभव कुछ कुछ होने लगा, राह यही रे परम की है।।40।।

अद्वैत की ओर वह बढ़ रहा, सत्त्व सार वह जान गया।
अधिष्ठान है इस जग का, इक आधार वह जान गया।।41।।

कर्तृत्व भाव नितान्त गया, कर्माशय वह जान गया।
किस विध किस पल क्या होये, विधि विधान वह जान गया।।42।।

त्रिकालदर्शी हो गया, सर्वज्ञ सर्वज्ञाता भया।
पूर्ण जग का चाहे कहो, वह आप ही निर्माता भया।।43।।

अधियज्ञ को भी वह जान गया, अधिदेव रूप पहचान गया।
विश्व रूप अधिभूत रूप, सार सत्त्व वह जान गया।।44।।

मन से ही वह उठ गया, फिर दु:ख कहाँ और शोक कहाँ।
सत्त्व में जब स्थित हुआ, तो बाह्य रहे यह लोक कहाँ।।45।।

संग ही दु:ख का कारण है, अहं दु:ख प्रवाह ही है।
मन ही मन रे जान लो, अनुभव की राह यह है।।46।।

सत्त्व में जिस पल आ गया, रजोगुणी मन नहीं रहा।
तम तद्रूप जो रहता था, सत्त्व अनुरूप वह हो गया।।47।।

17-9-61 क्रमशः

परम पूज्य माँ की करुणा

श्रीमती धर्मवती सूद

(श्रीमती धर्मवती सूद ने अपने जीवन के कई वर्ष अर्पणा में व्यतीत किये। यह लेख उन्होंने यहाँ आने के कुछ समय बाद लिखा। हम सबकी प्रिय आँटी का हाल ही में, 101 वर्ष की परिपक्व आयु में, निधन हुआ। अर्पणा परिवार की उनको प्रेम भरी श्रद्धांजलि)

सन् 1989 की बात है। नई दिल्ली में आयोजित किन्नैर्ड कॉलेज, लाहौर की ओल्ड सटूडैन्ट्स की मीटिंग पर अचानक मुझे श्रीमती सत्या महता मिल गईं , जो कई वर्षों से अर्पणा आश्रम, मधुबन में रह रही थीं। उन्होंने मुझे बताया कि मिस आनन्द, जो हमारे साथ कॉलेज में पढ़ती थीं, अब एक उच्च कोटि के संत के रूप में जानी जाती हैं, मानो भगवान का ही दूसरा रूप हों, और उन्हें सब परम पूज्य माँ कह कर सम्बोधित करते हैं। यह सुन कर मैं बहुत हैरान हुई और परम पूज्य माँ को मिलने के लिए बहुत उत्सुक हो उठी, क्योंकि उनसे मेरा बचपन से ही सम्पर्क रहा है।

लाहौर में परम पूज्य माँ का घर हमारे घर से बहुत दूर नहीं था, इस लिए कई बार मैं इनके साथ बैडमिन्टन खेलने इनके घर जाया करती थी। पूज्य माँ मेरे साथ बाँए हाथ से खेलती थीं, तो भी मैं इन से एक भी पांयेंट नहीं ले पाती थी। कॉलेज में भी मैं देखती थी कि जो लड़की पढ़ाई में कमज़ोर होती थी, परम पूज्य माँ हर प्रकार से उसकी सहायता किया करते थे।

इतने वर्ष पश्चात् श्रीमती सत्या महता से उनका ज़िक्र सुनकर मेरी बचपन की सारी यादें ताज़ा हो गईं। मैं उनसे मिलने हेतु अपने को अधिक दिन रोक नहीं पाई।

एक दिन अपने मैंनेजर को साथ ले कर मैं अर्पणा के लिये रवाना हो गई। बस में सारे रास्ते मैं यही सोचती रही कि इतने वर्षों के बाद उनको मिलने जा रही हूँ, पता नहीं माँ मुझे पहचानेंगी भी कि नहीं! पर जब मैं अर्पणा पहुँची और माँ से मिली, तो माँ के अथाह प्रेम को देख कर दंग रह गई। उन्होंने बड़े प्यार से मुझे अपने साथ बिठा कर खाना खिलाया और मेरे सारे परिवार के बारे में पूछती रहीं। उस दिन वर्षा हो रही थी। वर्षा में ही पूज्यनीय छोटे माँ के साथ मैं अस्पताल देखने गई और जैनरल वार्ड को देख कर चकित रह गई। मैंने आज तक किसी भी अस्पताल में जैनरल वार्ड इतना साफ सुधरा नहीं देखा था।

जब हमारे जाने का समय आया तो माँ ने कहा कि बस से मत जाओ। उन्होंने अपनी कार में दीपक और इन्दु को हमारे साथ भेजा, जो हमें पानीपत स्टेशन पर गाड़ी में बिठा कर आये।

इसके बाद मेरा समय समय पर मधुबन आना जाना लगा रहा। सन् 1991 में मैं अर्पणा आश्रम में रहने के लिये आ गई और पाँच महीने यहाँ बड़े सुख से रही। परन्तु परिवार कि समस्याओं के कारण मुझे वापिस दिल्ली जाना पड़ा। मैं इस बात पर बहुत दुःखी थी, पर सब के समझाने पर कि मेरे परिवार को मेरी ज़रूरत है, मैं देहली वापिस चली गई।

1998 से परम पूज्य माँ की अपार कृपा से मैं फिर अर्पणा आश्रम में रहने आ गई। मैंने अर्पणा में आ कर बहुत कुछ सीखा है। पहले तो मैं हर बात के लिये सदा दूसरे को ही दोष देती थी, पर अब धीरे धीरे मेरी दोष दृष्टि कम हो रही है। और मैं पल पल भगवान का शुक्र करती हूँ कि मुझे अर्पणा में रहने का सौभाग्य मिला। अगर धरती पर कहीं स्वर्ग है तो वह अर्पणा आश्रम में ही है।

परम पूज्य माँ हर रोज़ हमें यही कहते हैं कि इन्सान बनो और इन्सानियत के गुण - यानि क्षमा, करुणा, झुकाव और प्रेम अपने हृदय में लाओ। आज कल मैं भरसक प्रयत्न कर रही हूँ कि ये गुण अपने में लाऊँ और दूसरों को भी उतना प्यार करूँ जितना अपने आप से करती हूँ।

पूज्यनीय छोटे माँ कहते हैं कि सत्संग द्वारा हमें केवल राम नाम का अनन्य चिन्तन ही नहीं मिलता बल्कि यह शिष्टाचार भी सिखाता है और निष्काम कर्म करते हुए, वैश्वनर की पूजा करना भी सिखाता है।

परम पूज्य माँ तो प्रेम का अथाह सागर हैं, मेरे पास शब्द ही नहीं कि मैं किस प्रकार परम पूज्य माँ, पूज्यनीय छोटे माँ और अर्पणा परिवार के छोटे बड़े सभी सदस्यों का धन्यवाद करूँ, जो दिन रात मेरे ऊपर प्रेम वर्षा करते रहते हैं। मैं बड़ी भाग्यशाली हूँ जिस को परम पूज्य माँ के चरणों में रहने का अवसर मिला। ❖

अज सत्य पथ मुझे मिल गया, खुशियाँ मनावो रे...

प्रश्न – माँ, मन भजन में नहीं लगता।

पूज्य माँ - बेचारे मन को क्यों दोष देते हो? मन को तो सत्य में रुचि है। मन का गुण है रुचि और अरुचि; निर्णय तो बुद्धि का कर्म है। मन की लग्न हुई, इसलिए आप यहाँ आए। धोखा कौन देता है बार बार? धोखा तो बुद्धि देती है। बुद्धि कहती है - बाहर तेरा काम है, चल चलें। मन कहता है - नहीं, मेरी रुचि यहाँ है।

यदि इसको ज्ञान से समझा जाये, यदि आप अपने ही मन को देखने लग जायें, तो चित्त लग जाएगा। मन जहाँ जाए, वहाँ ज्ञान के साथ रोक लगाते चलो। मन से कहो - देख! तू रोज़ कहता है "जो होना है सो होना है" - यह झूठ मानता है या सच मानता है? फिर कहीं मन जाये तो कहो क्या हुआ? हर विचार जो मन में उठे, उसे शास्त्र की खड्ग से काटते जाओ। जब ध्यान में बैठते हो तो मन कहता है - चाटी में लस्सी पड़ी है, उठाकर रख आओ। तब मन से कहो - तुझे विश्वास नहीं कि कण-कण पर खाने वाले का नाम लिखा है। मन को समझाओ बार बार... यह है मन को टिकाना सत्य पर।

श्रुतशब्दयोग कहते हैं - जो सुना उसे मानो। जो सुना उसमें अपनी सुरत टिकाओ। शास्त्रों ने कहा - राम सत्य है। उस सत्य के साथ योग हो जाए तो वह जीवन में उतर ही आएगा। समाधि का अर्थ

है - समाहित धी। अपने कर्तापन का पूर्ण अभाव हो जाए। जो केवल विवेकमयी बुद्धि रह जाए, उसे समाधि कहते हैं। उसके लक्षण क्या हैं? दिनचर्या में बुद्धि स्थिर रहती है। फिर वह विचलित नहीं होती। उसमें धैर्य बना रहता है। तब क्रोध और लोभ की कोई जगह नहीं रहती।

समाहित का अर्थ है - जिसने पूर्ण को पूर्ण मान लिया। आज के बाद मेरा कोई निर्णय नहीं; मेरी माँग कुछ नहीं, जो शास्त्र ने कहा वही मेरा निर्णय है। उसने तो अपनी बुद्धि ही छोड़ दी... और यहाँ तक पहुँचने के लिए कहते हैं - सच बोल। If you are going to face facts, उसमें केवल विरह की तड़प है:

कभी न कभी, कभी न कभी, कभी तो राम बुलावोगे।
निज मान से बढ़कर के, कभी तो राम को चाहोगे।।1।।

फिर साधक कहेगा -

पथ भूला था, विपरीत राह का, पथिक मैं था हो गया।
विपरीत भावना में जाना, मेरा मन था खो गया।।

अज सत्य पथ मुझे मिल गया, खुशियाँ मनावो रे।
राम राम हाय मन मेरे, बलि बलि जावो रे।।

जो भी नाम है - माता का, पिता का, बच्चे का या राम का - नाम तो हर ही राम का है। उसमें जो प्रेम भरोगे वह नाम है। प्रेम नाम है। यदि मन में करुणा होगी, क्षमा होगी, तो वह ही नाम है। प्रेम नाम है, सत्य नाम है। यहाँ से नाम मिल सकता है प्रेम का; यहाँ शब्द नाम नहीं मिलता। वह नाम क्या है? जीवन में सच बोलो, यह नाम प्रवाह है, शब्द नाम नाम नहीं। ❖

परम पूज्य माँ

अर्पणा समाचार पत्र

अर्पणा ट्रस्ट, मधुबन,
करनाल, हरियाणा
जून 2026

अर्पणा आश्रम

'केन उपनिषद्' की दिव्य प्रस्तुति के अविस्मरणीय क्षण

परम पूज्य माँ द्वारा व्याख्यायित केन उपनिषद् की भव्य प्रस्तुति 15 और 16 अप्रैल को नई दिल्ली के कमानी ऑडिटोरियम में मंचित की गई, जहाँ दोनों दिन दर्शकों ने भरपूर प्रेम और उत्साह से उसका आनन्द उठाया।

पवित्र वेदों से प्रेरित होकर, परम पूज्य माँ ने एक कालातीत उपनिषदिक कथा को सजीव कर दिया, जिसका गहन आध्यात्मिक संदेश था – 'कर्ता कौन है – मैं या ब्रह्म?'

इस अवसर की गरिमा को और भी बढ़ाया 15 अप्रैल को दिल्ली के माननीय उपराज्यपाल, श्री तरणजीत सिंह संधू और 16 अप्रैल को भारतीय शास्त्रीय संगीतविद, डॉ. भरत गुप्त की स्नेहमयी उपस्थिति ने।

अर्पणा परिवार के सदस्य, मित्रगण तथा शुभचिंतक भी इस दिव्य प्रस्तुति के साक्षी बनने और इसे उत्सवपूर्वक मनाने हेतु उपस्थित रहे।

समाधि दिवस

16 अप्रैल को अर्पणा ने 'आशीर्वाद' के प्रांगण में परम पूज्य माँ के शाश्वत समाधि स्वरूप में लीन होने के पावन दिवस को श्रद्धापूर्वक मनाया।

परम पूज्य माँ से हमें मिली अमूल्य धरोहर, 'उर्वशी', हमें माया के आवरण हटाकर सत्य का दर्शन करने तथा सत्-चित्-आनंद में जीवन जीने का मार्ग प्रदान करती है।

इस विशेष दिन पर उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति आनंदमय श्रद्धा और दिव्य भाव से ओत-प्रोत हो उठा।

अर्पणा अस्पताल

आपातकालीन सेवाओं को सशक्त बनाने हेतु एम्बुलेंस का दान

आपातकालीन स्वास्थ्य सेवाओं को मजबूत बनाने हेतु अर्पणा को एम्बुलेंस दान की गईं। ये एम्बुलेंस सभी मरीज़ों, विशेष रूप से वंचित एवं आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्गों को, समय पर चिकित्सा सहायता प्रदान करेंगी। निःशुल्क अथवा रियायती सेवाओं के माध्यम से ग़रीब मरीज़ों की आवश्यक स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच सुनिश्चित की जाएगी।

- ओसवाल पंप लिमिटेड द्वारा एक ALS एम्बुलेंस दान की गई और
- बेरी उद्योग प्राइवेट लिमिटेड द्वारा दो नई एम्बुलेंस दान की गईं।

ये एम्बुलेंस सभी वंचित वर्गों के मरीज़ों की सेवा हेतु समर्पित रहेंगी।

हम इन पहलों के लिए Azuri Capital Advisors LLP, , White Waves Capital LLP, Beri Udyog Pvt. Ltd. एवं Oswal Pump Ltd. के सहयोग के लिए हृदय से आभारी हैं, साथ ही ग़रीब मरीज़ों के समर्थन हेतु Baij Nath Bhandari Public Charitable Trust के प्रति भी कृतज्ञ हैं।

हरियाणा ग्रामीण विकास

अर्पणा स्वयं सहायता समूहों ने 8 मार्च को अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस का आयोजन हनुमान स्टेडियम, कुंजपुरा में किया, जिसमें 80 गाँवों से लगभग 6,000 महिलाओं ने भाग लिया।

यह आयोजन उत्साह, एकजुटता और ग्रामीण महिलाओं के अधिक सशक्त एवं उज्ज्वल भविष्य की साझा भावना से परिपूर्ण था।

परिसर में स्वयं सहायता समूह की महिलाओं द्वारा एक रंगारंग मेले का आयोजन किया गया, जिसमें उनके उद्यमशील प्रयासों से तैयार विभिन्न उत्पादों का प्रदर्शन एवं विक्रय किया गया, जिनमें शामिल थे:

- कढ़ी-चावल, पराठे एवं घर के बने भोजन के स्टॉल।
- मिट्टी के बर्तन एवं हस्तनिर्मित वस्तुएँ।
- गाँव की छोटी दुकानों के उत्पादों को बढ़ावा देना।

इस आयोजन ने ग्रामीण महिलाओं की कौशल क्षमता, आत्मविश्वास एवं उद्यमशीलता की भावना को प्रदर्शित किया तथा उनके आर्थिक सशक्तिकरण को भी बढ़ावा दिया। यह महिलाओं की शक्ति, एकता एवं सशक्तिकरण का अत्यंत प्रेरणादायक उत्सव था।

इन पहलों हेतु बैजनाथ भंडारी पब्लिक चैरिटेबल ट्रस्ट, श्रीमती सुषमा लाल एवं श्री रविंद्र बहल के सहयोग के लिए अर्पणा हार्दिक आभार व्यक्त करता है।

नई दिल्ली शिक्षा कार्यक्रम

कक्षा 10वीं एवं 12वीं CBSE 2026 के बोर्ड परिणाम - सभी उत्तीर्ण!

सुधा

कक्षा 12वीं की बोर्ड परीक्षा में अर्पणा के 37 विद्यार्थियों ने भाग लिया। सुधा ने 92.2% अंक प्राप्त कर प्रथम स्थान प्राप्त किया; भूमिका 91.6% अंकों के साथ द्वितीय तथा ज्योति 91.2% अंकों के साथ तृतीय स्थान पर रही।

कक्षा 10वीं की बोर्ड परीक्षा में 57 विद्यार्थियों ने भाग लिया। चाहत ने 78.8% अंकों के साथ प्रथम स्थान प्राप्त किया, वंश एवं भूमिका ने 74% अंकों के साथ द्वितीय तथा सपना ने 73% अंकों के साथ तृतीय स्थान प्राप्त किया।

कक्षा 9 से 12 तक की सभी वरिष्ठ छात्राओं को जूतों का वितरण

17 अप्रैल को 'Walk with Dignity' पहल के अंतर्गत कक्षा 9 से 12 तक की छात्राओं को जूते वितरित किए गए, ताकि वे आत्मविश्वास एवं सम्मान के साथ अपनी शिक्षा जारी रख सकें।

इस पहल को अर्पणा की पूर्व छात्रा सुश्री निधि का सहयोग प्राप्त हुआ, जो वर्तमान में Child Mental Health Foundation नामक NGO से जुड़ी हैं, जो वंचित समुदायों के बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य एवं समान स्वास्थ्य सेवाओं को बढ़ावा देने के लिए कार्यरत है।

दिल्ली विश्वविद्यालय के अभ्यर्थियों हेतु अर्पणा द्वारा CUET कोचिंग

प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में प्रवेश प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले विद्यार्थियों के लिए अर्पणा द्वारा अतिरिक्त कक्षाओं का आयोजन किया गया।

कुल 10 विद्यार्थियों को श्रीमती शकुंतला यादव द्वारा CUET की तैयारी हेतु कोचिंग प्रदान की गई, जिससे वे अपने विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने के लक्ष्य को प्राप्त कर सकें।

वसंत विहार स्थित अर्पणा केंद्र में छात्रवृत्ति कार्यक्रम

27 मार्च 2026 को अर्पणा ने नई दिल्ली के वसंत विहार स्थित 'ज्ञान आरंभ' ट्यूशन सहायता कार्यक्रम के मेधावी विद्यार्थियों को सम्मानित करने हेतु छात्रवृत्ति कार्यक्रम का आयोजन किया।

इस कार्यक्रम में श्री रवि दयाल (ट्रस्टी), श्रीमती प्रिया दयाल, श्रीमती मीता जैन (GM) एवं डॉ. राजिंदर बहल उपस्थित रहे।

कक्षा 1 से 9 तक के विद्यार्थियों को शैक्षणिक उत्कृष्टता, विषय दक्षता एवं उत्कृष्ट उपस्थिति हेतु सम्मानित किया गया, जबकि कक्षा 10 से 12 तक के विद्यार्थियों को "मोस्ट प्रॉमिसिंग स्टूडेंट्स" के रूप में सम्मानित किया गया। कुल 70 विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति कार्यक्रम के अंतर्गत नकद पुरस्कार एवं पुस्तकें प्रदान की गईं।

अर्पणा शिक्षा सहयोग हेतु Caring Hand for Children (USA), Essel Social Welfare Foundation (New Delhi), एवं AVIVA Plc (UK). के प्रति आभारी है।

हिमाचल प्रदेश

लेडी मोहिनी नून केंट के समर्थन ने ग्रामीण आजीविकाओं को सुदृढ़ बनाया

घास काटने की मशीनें

पहाड़ी क्षेत्रों के किसान अत्यंत कठिन परिश्रमपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। वे खड़ी ढलानों पर चढ़कर घास काटते हैं और छोटे खेतों में कठिन मेहनत से खेती करते हैं।

उनकी आजीविका को सहयोग देने हेतु 12 अप्रैल को रवि वैली FPO, भड़ियाकोठी में जातकरी क्षेत्र के किसान समूहों की महिलाओं एवं पुरुषों को 10 बहुउद्देश्यीय घास काटने की मशीनें वितरित की गईं। यह पहल उनके दैनिक कार्यभार को कम करने एवं कार्यक्षमता बढ़ाने में सहायक होगी।

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों हेतु वाहन

हिमाचल प्रदेश में अर्पणा के विकास कार्यक्रमों के समर्थन हेतु एक वाहन दान किया गया। यह वाहन टीम को दूरस्थ गाँवों तक अधिक प्रभावी ढंग से पहुँचने, आवश्यक सामग्री पहुँचाने, जागरूकता गतिविधियाँ संचालित करने एवं वंचित समुदायों को आवश्यक सेवाएँ प्रदान करने में सहायता करेगा। यह महत्वपूर्ण योगदान ग्रामीण विकास प्रयासों को और सशक्त बनाएगा तथा ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों के जीवन स्तर को बेहतर बनाने में सहायक सिद्ध होगा।

इन पहलों के लिए तथा अन्य महिला एवं किसान सशक्तिकरण कार्यक्रमों हेतु बैजनाथ भंडारी पब्लिक चैरिटेबल ट्रस्ट, श्री रविंद्र बहल एवं श्री श्याम दीवान के सहयोग सहित लेडी मोहिनी नून केंट के प्रति अर्पणा हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता है।

LET'S EMPOWER VULNERABLE WOMEN AND CHILDREN AS THEY REACH FOR THEIR DREAMS!

ARPANA TRUST

EDUCATION FOR DISADVANTAGED CHILDREN

- Tuition support for classes 1-12 pre-school Classes for toddlers, cultural activities.
- Vocational training classes.

DONATE ONLINE

HUMANE VALUES FOR AN EQUITABLE SOCIETY

- Dramas, Publication, Satsangs
- Charitable grants for the vulnerable
- Health/Socio economic assistance

ARPANA RESEARCH & CHARITIES TRUST

PROVIDES MODERN HEALTH CARE THROUGH

- Arpana Hospital for free /affordable health care.
- Arpana Medical centre, Himachal

DONATE ONLINE

EMPOWERING WOMEN

- Self Help Group & SHG Federations.
- Micro – Credit, Income generation, community development

EMPOWERING THE DIFFERENTLY ABLED

- Differently Abled Persons Organizations for health, assistive devices, certifications and income generation.

DONATIONS TO ARPANA ARE 50% TAX EXEMPT UNDER SECTION 80G, INCOME TAX ACT 1961

Cheques in favour of Arpana Trust and Arpana Research & Charities Trust to be sent to:
Information & Resources Department
Arpana, Madhuban, Karnal- 132037, Haryana

Donations through Direct Bank Remittance:
Bank of India, Karnal (IFSC Code: BKID0006750)
Arpana Research & Charities Trust; Bank Account No. 675010100100014,
Arpana Trust Bank Account No. 675010100100001

FOREIGN DONATIONS TO ARPANA ARE 100% TAX EXEMPT WHEN SENT THROUGH:

Arpana Canada
Mrs. Sue Bhanot, 7 Scarlett Drive, Brampton,
Ontario L6Y 359 Canada
Email: suebhanot@rogers.com

India Development & Relief Fund (IDRF)
Mr. Vinod Prakash, President, IDRF, 5821 Mossrock Drive,
North Bethesda, MD 20852 USA
E mail: vinod@idrf.org

Contact Us:
Harishwar Dayal, Executive Director +91 98186 00644
Email us: arct@arpana.org | at@arpana.org

Aruna Dayal, Director Development +91 99916 87310
Websites www.arpana.org www.arpanaservices.org